ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(2): 244-247
www.allresearchjournal.com
Received: 02-12-2020
Accepted: 12-01-2021

Ravi Prakash
JBT Teacher, Govt. Primary School Bhotwas Bhondu, Rewari, Haryana, India

Corresponding Author:
Ravi Prakash
JBT Teacher, Govt. Primary School Bhotwas Bhondu, Rewari, Haryana, India

भारतीय इतिहास में कृषक आंदोलनों का ऐतिहासिक विश्लेषण

Ravi Prakash

सारांश
प्रस्तुत अध्ययन भारतीय इतिहास में कृषक आंदोलनों की ऐतिहासिकता की व्याख्या करता है। भारत में कृषक असंतोष के अंतर्गत औपनिवेशिक भारत तथा स्वाधीन भारत में हुए प्रमुख किसान आंदोलनों को सम्मिलित किया गया है। भारत की कुल आबादी का 75 फ़ीसदी हिस्सा किसानों का है अतः इस विषय में अध्ययन करना अत्यधिक कारगर सिद्ध होगा। इस अध्ययन के अंतर्गत गांधीवादी युग के भी कृषक आंदोलनों को सम्मिलित किया गया है जिनका सर्वाधिक उल्लेख राष्ट्रीय आंदोलनों की सफलता के रूप में होता आया है। स्वातंत्र्योत्तर कालीन कृषक आंदोलनों का विश्लेषण भी इस बात की समीक्षा करता है कि कृषकों के कल्याण से संबंधित नीतियों का क्रियान्वयन प्रभावी ढंग से नहीं हो सका है।

मुख्य शब्दः किसान आंदोलन, तेभागा, पाबना विद्रोह, नील विद्रोह, चंपारण, खेड़ा आंदोलन, गांधीवादी युग

प्रस्तावनाः

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि तथा कृषक का महत्वपूर्ण स्थान रहा है कृषि प्रारंभ से ही हमारे आर्थिक सामाजिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का माध्यम बनी रही है। वर्ष 2011 **की जनगणना के अनुसार** 54.6 **प्रतिशत आबादी कृषि या कृषि से संबंधित कार्यों में संलग्न है । देश की जीडीपी में कृषि के योगदान देखा जाए तो वर्ष** 1950 51 **में यह** 51.81% **था जो कि वर्ष** 2013 14 **मई** 18.20% **ही रह गया। जिससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि कृषि अब घाटे का सौदा रह गई है जिसके चलते कृषकों के असंतोष को देखा जाए तो भारतीय इतिहास में कृषक आंदोलनों की श्रृंखला अत्यधिक उतार चढ़ाव से परिपूर्ण रही है औपनिवेशिक भारत में यह श्रंखला राष्ट्रवाद के समानांतर राष्ट्रीय आंदोलनों की सफलता की महत्वपूर्ण इकाइयों के रूप में रूपांतरित हुई है इसके अतिरिक्त स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात कृषक आंदोलनों का इतिहास कृषक कल्याण हेतु किए जाने वाले दावों के समक्ष एक चुनौती के रूप में समय.समय पर प्रदर्शित हुआ है। किसान विद्रोह के मूल कारणों की पड़ताल करने से पता चलता है कि ए किसानों की विशिष्ट आर्थिक समस्याएं उनके नैतिक ढांचे के टूटने के साथ जुड़ गई तब उसकी प्रतिक्रिया में किसानों में उभार आया। इस प्रक्रिया को ई. पी. थॉमसन ने " '"नैतिक अर्थव्यवस्था' कहा है।** [4]

अध्ययन उद्देश्य

इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य औपनिवेशिक शासन के दौरान हुए राष्ट्रीय व्यापी कृषक आंदोलनों का पुनरावलोकन करना है इसके अतिरिक्त स्वातंत्र्योत्तर भारत में उपजे प्रमुख किसान आंदोलनों का विश्लेषण भी सम्मिलित किया गया है । अध्ययन की दृष्टि से इस दो प्रमुख बिंदुओ के रूप में विश्लेषित करना है । जो निम्न है

1. **औपनिवेशिक भारत में कृषक आंदोलन व उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना ।**
2. **स्वातंत्र्योत्तर भारत के प्रमुख कृषक आंदोलन व उनका पुनरावलोकन करना ।**

औपनिवेशिक भारत में कृषक असंतोष के प्रमुख कारणों में तत्कालीन कृषि व्यवस्था में किए गए आक्रामक परिवर्तनों को आधार माना गया है इसके अतिरिक्त इतिहासकारों का मानना है कि ब्रिटिश शासन के दौरान भू राजस्व का प्रमुख स्रोत खेती थी तथा ईस्ट इंडिया कंपनी के विस्तार हेतु आवश्यक था कि अधिक से अधिक भू राजस्व एकत्रित किया जाए परंतु तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाई गई कृषि संबधित कानून अथवा किए गए परिवर्तन अनुमानित संख्या से दुगुना भू राजस्व प्राप्त करने में सहयोगी थे । अंग्रजों की इसी नीति के विरुद्ध समय समय पर कृषकों के रोष उनके विद्रोह के रूप में सामने आता है।।

नील विद्रोह

1859 से 1860 के मध्य का काल इस कृषक असंतोष के चरम पर था। यह विद्रोह ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध बंगाल के शोषित किसानों का एक व्यापक विद्रोह था। जिसकी सफलता ने किसानों में आत्मविश्वास उत्पन्न करने के साथ साथ अंग्रेजी दमनकारी नीतियों के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद करने हेतु प्रेरित किया। वर्ष

पाबना विद्रोह

जमींदारों अथवा साहूकारों के अत्याचारों से त्रस्त किसान वर्ग ईशान चंद्र राय के नेतृत्व में एक वृहद जनाक्रोश के रूप में उभरा । पटसन की खेती करने वाले किसानों तक केंद्रित यह कृषक विद्रोह हिंदू मुस्लिम एकता के विचारो से परिपूर्ण रहा जिसकी उपलब्धि ही थी कि अंग्रेजी लेफ्टिनेंट गवर्नर केंपबेल ने पावना के इस विद्रोह को अपना समर्थन दिया था ।

दक्कन विद्रोह

महाराष्ट्र के पुणे आसपास के जिलों कि किसानों द्वारा किया गया यह विद्रोह हो साहूकारों द्वारा अनियंत्रित कर वृद्धि तथा बीज की दरों में वृद्धि के विरोध में उत्पन्न हुआ। 1874 से 1875 के दौरान पुणे तथा अहमदनगर जिलों के कृषकों द्वारा अत्यधिक संख्या ने इस आंदोलन के समर्थन को नई ऊंचाइयों पर पहुंचा दिया था।

चंपारण सत्याग्रह

वर्ष 1917 में दक्षिण अफ्रीका से वापस लौट कर गांधीजी की चंपारण यात्रा का प्रमुख उद्देश्य कृषक आंदोलन को राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ना था अथवा यूं कहें कि कृषकों को राष्ट्रीय मंच प्रदान करना ही गांधी जी की चंपारण यात्रा का सार्थक उद्देश्य माना जा सकता है। गांधी जी तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अतिरिक्त चंपारण के आम जनमानस के व्यापक समर्थन का मिला.जुला रूप चंपारण सत्याग्रह के दौरान देखने को मिलता है। इस आंदोलन की सफलता का आकलन इस बात से किया जा सकता है कि ब्रिटिश सरकार को निलह कृषकों पर थोपी गई तीन कठिया व्यवस्था को समाप्त कर देना पड़ा जिससे नील की खेती करने वाले कृषकों को सदैव के लिए इस दमनकारी व्यवस्था से मुक्ति मिल गई थी।

खेड़ा सत्याग्रह

यह सत्याग्रह भी कृषकों की समस्याओं से प्रेरित रहा जिसने ब्रिटिश सरकार को झुकने पर मजबूर कर दिया था। गांधीवादी युग का यह दूसरा सफल आंदोलन माना जा सकता है । नवंबर 19 17 में कापड़वंज तालुका के मोहनलाल पंड्या ने इस आंदोलन की एक पहल मात्र की तत्पश्चात महात्मा गांधी इस आंदोलन पर अपना नियंत्रण स्थापित करने में सफल हुए और उनके इस हस्तक्षेप का मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी लोगों पर पड़ा जिसने इसे एक विशाल रूप देने का कार्य किया।जैक्यूस पुष्पादास ने अपने विस्तृत अध्ययन में इस संबंध में बताया है कि किसानों के उभार में निर्णायक मध्यस्थ की भूमिका छोटे शहरों या कस्बों में गांधीजी से प्रभावित नए बुद्धिजीवियों ने नहीं बल्कि धनी और मंझोले किसानों के निचले स्तर, सूदखोरी और व्यापार में प्रतियोगिता से असंतुष्ट स्थानीय महाजन और व्यापारी तथा कुछ ग्रामीण मुख्तार और स्कूल शिक्षकों ने निभाई। [2]

एका आंदोलन

वर्ष 1918 में उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ से यह आंदोलन किसानों की बहुत बड़ी संख्या के रूप में उत्पन्न हुआ जिसमे बाबा रामचंद्र जैसा सक्षम नेता सामने आया जिन्होंने किसानों की जायज मांगों हेतु उन्हें संगठित करने का काम किया। आंदोलन के प्रति जनमानस को समर्थित करने की दृष्टि से रामायण से संबंधित धार्मिक मिथकों मुहावरों का अत्यधिक प्रयोग इस आंदोलन में किया गया। इसका इस आंदोलन का प्रमुख उद्देश्य 'सेस' और 'बेगार' की समाप्ति 'बेदखल की गई भूमि, जमीन पर खेती की मनाही द्वारा भू स्वामियों का बहिष्कार करना था। वर्ष 1920 आते.आते यह आंदोलन अन्य जिलों में भी विस्तृत होता जा रहा था। 1921 में यह आंदोलन अपने चरम पर था जब उत्तर प्रदेश में कई जगह आक्रामक विद्रोह हो गए। इस संबंध में तत्कालीन गवर्नर बटलर ने कहा कि, "दक्षिणी अवध के 3जिलों में क्रांति जैसी स्थितियों को शुरुआत देखी । [3]

तेभागा आंदोलन

तेभागा किसान आंदोलन अविभाजित बंगाल में 40 के दशक के मध्य में है अद्व टाई पर कार्य करने वाले कृषकों द्वारा उपज में अपने लिए दो तिहाई भाग से भागा की मांग के लिए किया गया था। इस आंदोलन का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि यह आंदोलन एक तरफ भू स्वामियों के मध्यवर्ग के बढ़ते हितों

के विरुद्ध था तो वहीं दूसरी ओर कृषि मजदूरों अध बटाई पर काम करने वाले मजदूरों तथा गरीब किसानों के आर्थिक स्तर में निरंतर कमी के भी खिलाफ था। वर्ष 1940 की भूमि राजस्व रिपोर्ट के मुताबिक अविभाजित बंगाल की 8,547,004 एकड़ भूमि में 592,335 एकड़ भूमि स्थानांतरित हो गई थी जिसमें से 31.7% अधबटाई वर्ग व 24.6% काश्तकारी में दे दी गई थी ।,एल आर सी 1940, खंड: 120)। व्यापारियों तथा भू स्वामियों द्वारा गरीब दशकों को अत्यधिक ब्याज पर धन दे दिया जाता था जब गरीब किसान ऋण चुकाने में असमर्थ होकर अपनी भूमि सुधार को दे देता था तो उसे भूमि पर सशक्त खेती करने दी जाती थी वह अपने उपज का आधा भाग सूदखोर को देना होता था।

स्वतंत्र भारत के प्रमुख किसान आंदोलन

भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात देश के सभी वर्गों में कृषकों युक्त जनसंख्या में बहुआयामी वृद्धि एवं विकास के अनुमानित लक्ष्यों की ओर उम्मीदें प्रबल होने की जगह समय. समय पर खोखले आंकड़े एवम सरकारी प्रयत्नों के परिणाम कल्पना मात्र ही बने हुए है ।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता के पश्चात राजनीति सभी तरह से सत्ता पर बने रहने के षड्यंत्र का पर्याय बनी हुई थी सत्ता का कठोर यथार्थ यह था कि जो नेहरू भारत की सेवा का संकल्प ले रहे थे उन्हीं की सरकार ने तेलंगाना में समतामूलक क्रांतिकारी अवधारणा में यकीन रखने वाले भारतीय किसान आंदोलन को बर्बरता पूर्वक कुचल दिया था। आजादी मजदूरों किसानों खेत जमीदारों बेरोजगारों दलितों तथा स्त्रियों के लिए नहीं आई बल्कि युवा है उद्योगपतियों बड़े जमींदारों सत्ता के आतंक में लिप्त राजनीतिक पार्टियों प्रीत दास बौद्धिक वर्ग के लिए आई सत्ता के गिरने का जो क्रम शुरू हुआ उसे भारतीय जनता लाचार बेबस होकर देखने के लिए अभिशप्त हुई ।[5]

सरकारी तंत्र की विफलता का परिणाम है कि स्वतंत्रता प्राप्त हो जाने के पश्चात भी कृषक वर्ग की समस्याएं ब्रिटिश कालीन भारत के समतुल्य ही बनी हुई हैं जिसके कई गंभीर परिणाम कृषक आंदोलनों के रूप में सामने आता रहा है। हरित क्रांति की सीमित सफलता कृषकों के आक्रोश को कम करने में निष्फल सिद्ध हुई है जिस विश्व बैंक ने पहले जिस नई टेक्नोलॉजी के प्रचार प्रसार के लिए आवश्यक उपादान (उन्नत बीज रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाइयां सिंचाई बिजली, डीजल और आधुनिक कृषि यंत्र) सरकार द्वारा सस्ते व अनुदान युक्त देने की सिफारिश की थी उसी ने अब रंग बदल लिया है अर्थात विश्व बैंक द्वारा बनाई गई यह नीतियां भी अब जमीनी हकीकत से कोसों दूर हो चुकी हैं। क्योंकि वर्ष 1991 में विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा कृषि युक्त अनुदान में कमी करते हुए इन नीतियों में परिवर्तन कर दिया गया है बल्कि उन्हें महंगा करने की नीति को अपना लिया गया है। विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के पश्चात सस्ते में निर्यात की सीमाओं ने भारतीय कृषक ओं को बुरी तरह प्रभावित कर दिया है। बढ़ती लागत और कृषि उपज के घटते दामों ने पुनः यह सिद्ध कर दिया है कि खेती घाटे का सौदा बन गई है। किसान कर्ज में डूबते जा रहे हैं और उम्मीदें समाप्त हो जाने पर आत्महत्या जैसे जघन्य अपराधों में भी निरंतर वृद्धि होती जा रही है। पिछले कई वर्षों से किसान आत्महत्या की संख्या में निरंतर वृद्धि देखने को मिली है परंतु भारत की सरकारें जमीनी तौर पर काम करने की बजाए कागजी कार्यक्रम नीतियों और नियमों के क्रियान्वयन में व्यस्त हैं। [6]

तेलंगाना आंदोलन

यह आंदोलन आंध्र प्रदेश में स्थानीय भू स्वामियों के सामंती दमन के विरुद्ध लड़ा गया था। जिसमें मुख्य भूमिका में 1940 में। 'जागीर रायतु संघम' का गठन किया गया तत्पश्चात 1942 में कम्युनिस्टों पर से प्रतिबंध हटने पर उन्होंने 'वेट्टी को हटाने ' 'अतिशय लगान को रोकने' तथा काश्तकारों की मुक्ति के लिए 'करो', ' राजस्व ' तथा 'लगान' को कम करने खेती करने वाले 'काश्तकारों के पट्टे' के अधिकारों की पुष्टि आदि के मुद्दों को उठाया।

नक्सली आंदोलन

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात 1967 का यह आंदोलन कृषक आंदोलनों के लिए एक मोड़ के रूप में साबित हुआ पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के नक्सलबाड़ी थाने से प्रारंभ हुआ यह आंदोलन नक्सली आंदोलन के रूप में जान आ गया पश्चिम बंगाल की सरकार ने पश्चिम बंगाल संपत्ति अधिग्रहण कानून 1953 को लागू करके जमीदारी तथा अन्य मध्यवर्ती प्रथाओं को समाप्त कर दिया । जिसके पश्चात यह नक्सली आंदोलन देश के कई भागों में विस्तृत होता गया जिसके अंतर्गत शस्त्र प्रतिरोध मुक्त क्षेत्र की घोषणा हत्या तथा गिरफ्तारी पश्चिम बंगाल के कृषि समाज का एक नियमित हिंसा बन चुकी थी। नक्सलबाड़ी क्षेत्र में सीपीआईएम नेतृत्व नक्सलबाड़ी नेताओं के विरुद्ध एक संगठन दल विरोधी समूह का गठन किया जिसके पश्चात कई राजनीतिक परिवर्तन भी देखने को मिलते है।

भारतीय किसान यूनियन (B.K.U)

1988 जनवरी माह में मेरठ जिला उत्तर प्रदेश से लगभग 20000 किसान सरकार द्वारा बढ़ाई गई बिजली की दरों के विरोध के चलते अपनी मांगों के साथ सड़कों पर एक व्यापक जनाक्रोश के रूप में उभरे । बीकेयू पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा हरियाणा के किसानों का एक अग्रणी संगठन है यह किसान आंदोलन एक बहुत बड़े अनुशासित धरने के रूप में भी जाना

जाता है जिस दौरान आम जनमानस का भरपूर समर्थन भी इस आंदोलन को मिला सरकार द्वारा 1990 के दशक में अपनाई गई उदारीकरण की नीति के फल स्वरुप गन्ने तथा गेहूं की सरकारी खरीद के मूल्यों में बढ़ोतरी करने, अंतर राज्यीय कृषि आवाजाही पर लगी पाबंदियों को हटाने, न्यूनतम दर पर बिजली आपूर्ति किसानों पर बकाया कर्ज माफ करने तथा किसानों को पेंशन जैसे प्रावधानों की मांगों के साथ यह किसान संगठन देशभर के किसानों के लिए एक उम्मीद के तौर पर उभरा। जिसके पश्चात देश के अन्य क्षेत्रों में भी किसानों द्वारा वैसी ही मांगों के साथ विरोध प्रदर्शन किए जाने लगे जिनमें महाराष्ट्र के शेतकरी संगठन के किसानों के आंदोलन को मुख्य माना जाता है। देश की राजधानी दिल्ली में बीकेयू द्वारा किसान रैली का आयोजन तथा जातिगत समुदायों को आर्थिक मसले पर एकजुट करने के लिए जाति पंचायत की परंपरागत संस्थाओं का उपयोग भी देखने को मिला।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन का विश्लेषण करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि देश की आबादी का एक बहुत बड़ा वर्ग होने के बावजूद कृषकों के हितों हेतु बनाई गई नीतियां उतनी तर्कसंगत नजर नहीं आती है । हालांकि कई क्षेत्रों में कृषकों के कल्याण हेतु सरकारी आंकड़े इस समस्या को थोड़ा कम जरूर करते है परंतु इसके अभी और परिवर्तन लाने की आवश्यकता है ताकि देश का किसान पूर्ण रूप से सशक्त किसान के रूप में खेती कर सके । औपनिवेशिक काल में हुए किसान आंदोलनों के विस्तृत विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इन जन आंदोलनों के उभार ने ब्रिटिश शासकों की राजनीतिक पकड़ को निष्क्रिय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पिछले कई दशकों में अनेक सशक्त किसान आंदोलन हुए है जिनमें तमिल नाडु कर्नाटक महाराष्ट्र गुजरात पंजाब पश्चिम उत्तर प्रदेश हरियाणा आदि राज्यों से लाखों की संख्या में किसानों द्वारा अपनी मांगों को लेकर बड़े स्तर पर विरोध प्रदर्शन हुए। इसी प्रकार 80 और 90 के दशक में अनेकों किसान आंदोलन बड़े.बड़े धरनों व रैलियों के रूप में संघर्षरत रहे है ।

संदर्भ

1. मानिक लाल गुप्ता, भारत का इतिहास प्रागैतिहासिक काल से आधुनिक काल तक, अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, वर्ष 2003, पृष्ठ 203
2. पॉल एफ, पावर. गांधी एंड वर्ल्ड अफेयर्स, पृष्ठ 162
3. विपिन चंद्र ए भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृष्ठ 147-148
4. ई. पी. थॉमसन, द मोरल इकनॉमी ऑफ द ब्रिटिश क्राउड इन द 18th सेंचरी, पृष्ठ 68
5. समकालीन सृजन धर्म आतंकवाद और आजादी, पृष्ठ 247
6. नवीन पटनायक, किसान आंदोलन दशा और दिशा, वर्ष 2009, राजकमल प्रकाशन समूह